e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

IJIRSET
International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 11, Issue 6, June 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 8.118

9940 572 462 | 6381 907 438 | ijirset@gmail.com | www.ijirset.com

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

योग और आयुर्वेद का आज के दौर में पुनर्जागरण

Dr. Salini Sengar

MA (Sanskrit), Ph.D. , Dr. BR Ambedkar University, Agra, India

सार

योग (संस्कृत: *योगः*) एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने (योग) का काम होता है। 'योग' शब्द तथा इसकी प्रक्रिया और धारणा हिन्दू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में ध्यान प्रक्रिया से सम्बन्धित है। योग शब्द भारत से बौद्ध पन्थ के साथ चीन, जापान, तिब्बत, दक्षिण पूर्व एशिया और श्री लंका में भी फैल गया है और इस समय सारे सभ्य जगत् में लोग इससे परिचित हैं। सिद्धि के बाद पहली बार ११ दिसम्बर २०१४ को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने प्रत्येक वर्ष २१ जून को विश्व योग दिवस के रूप में मान्यता दी है।

हिन्दू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में योग के अनेक सम्प्रदाय हैं, योग के विभिन्न लक्ष्य हैं तथा योग के अलग-अलग व्यवहार हैं।परम्परागत योग तथा इसका आधुनिक रूप विश्व भर में प्रसिद्ध हैं।

सबसे पहले 'योग' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इसके बाद अनेक उपनिषदों में इसका उल्लेख आया है। कठोपनिषद में सबसे पहले योग शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिस अर्थ में इसे आधुनिक समय में समझा जाता है। माना जाता है कि कठोपनिषद की रचना ईसापूर्व पांचवीं और तीसरी शताब्दी ईसापूर्व के बीच के कालखण्ड में हुई थी। पतञ्जलि का योगसूत्र योग का सबसे पूर्ण ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी या उसके आसपास माना जाता है। हठ योग के ग्रन्थ ९वीं से लेकर ११वीं शताब्दी में रचे जाने लगे थे। इनका विकास तन्त्र से हुआ।

पश्चिमी जगत में "योग" को हठयोग के आधुनिक रूप में लिया जाता है जिसमें शारीरिक फिटनेस, तनाव-शैथिल्य तथा विश्रान्ति (relaxation) की तकनीकों की प्रधानता है। ये तकनीकें मुख्यतः आसनों पर आधारित हैं जबकि परम्परागत योग का केन्द्र बिन्दु ध्यान है और वह सांसारिक लगावों से छुटकारा दिलाने का प्रयास करता है। पश्चिमी जगत में आधुनिक योग का प्रचार-प्रसार भारत से उन देशों में गये गुरुओं ने किया जो प्रायः स्वामी विवेकानन्द की पश्चिमी जगत में प्रसिद्धि के बाद वहाँ गये थे।

आयुर्वेद (= आयुः + वेद ; शाब्दिक अर्थ : 'आयु का वेद' या 'दीर्घायु का विज्ञान'[1]एक मुख्य और सबसे श्रेष्ठ चिकित्सा प्रणाली है जिसकी जड़ें भारतीय उपमहाद्वीप में हैं।[2] भारत, नेपाल और श्रीलंका में आयुर्वेद का अत्यधिक प्रचलन है, जहाँ लगभग ८० प्रतिशत जनसंख्या इसका उपयोग करती है। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा प्रणालियों में से एक है| आयुर्वेद, भारतीय आयुर्विज्ञान है। आयुर्विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने, रोग हो जाने पर रोग से मुक्त करने अथवा उसका शमन करने तथा आयु बढ़ाने से है।

> हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
> मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥ -- (चरक संहिता १/४०)

आयुर्वेद के ग्रन्थ तीन शारीरिक दोषों (त्रिदोष = वात, पित्त, कफ) के असंतुलन को रोग का कारण मानते हैं और समदोष की स्थिति को आरोग्य। आयुर्वेद को त्रिस्कन्ध (तीन कन्धों वाला) अथवा त्रिसूत्र भी कहा जाता है, ये तीन स्कन्ध अथवा त्रिसूत्र हैं - हेतु , लिंग , औषध। इसी प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेदीय चिकित्सा के आठ अंग माने गए हैं (अष्टांग वैद्यक), ये आठ अंग ये हैं- कायचिकित्सा, शल्यतन्त्र, शालक्यतन्त्र, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, भूतविद्या, रसायनतन्त्र और वाजीकरण। कुछ लोग आयुर्वेद के सिद्धान्त और व्यवहार को बहुत आधिक महत्व देते हैं और इसे स्वयं ब्रह्मा ने प्रजा हित के लिए दिया हुआ विज्ञान है एसा मानते हैं।अन्य इसके बजाय, इसे एक प्रोटोसाइंस, या ट्रांस-साइंस सिस्टम मानते हैं।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भारत में आयुर्वेदिक दवाओं के उत्पादन के 1 लाख 40 हजार करोड़ रुपए तक पहुंचने पर संतोष व्यक्त करते हुए आयुष के क्षेत्र में काम करने वाले स्टार्ट अप्स से आज आग्रह किया कि वे अपने पोर्टल में ना केवल अंग्रेजी बल्कि संयुक्त राष्ट्र में मान्यता प्राप्त सभी भाषाओं में भी सामग्री डालें जिससे भारतीय ज्ञान एवं उत्पाद दुनिया के कोने-कोन में छा जाएं। पीएम मोदी ने आकाशवाणी पर अपने मासिक कार्यक्रम मन की बात के 87वें अंक में कहा कि हमारी संस्कृति में सबको सौ-वर्ष के स्वस्थ जीवन की शुभकामनाएं दी जाती हैं। हम 7 अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' मनाएंगे। उन्होंने कहा कि आज पूरे विश्व में स्वास्थ्य को लेकर चाहे वो योग हो या आयुर्वेद इसके प्रति रुझान बढ़ता जा रहा है। अभी आपने देखा होगा कि पिछले ही सप्ताह कतर में एक योग कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इसमें 114 देशों के नागरिकों ने हिस्सा लेकर एक नया विश्व रिकॉर्ड बना दिया। इसी तरह से आयुष उद्योग का बाजार भी लगातार बड़ा हो रहा है। 6 साल पहले आयुर्वेद से जुड़ी दवाइयों का बाजार 22 हजार करोड़ रुपए के आसपास का था। आज आयुष विनिर्माण उद्योग एक लाख चालीस हजार करोड़ रुपए के आसपास पहुंच रहा है, यानी इस क्षेत्र में संभावनाएं लगातार बढ़ रही हैं। स्टार्ट अप जगत में भी आयुष आकर्षण का विषय बनता जा रहा है। उन्होंने स्वास्थ्य क्षेत्र के आयुष विषयक स्टार्ट अप्स पर बात करते हुए कहा कि एक स्टार्ट अप है- 'कपिवा' इसके नाम में ही इसका मतलब छिपा है। इसमें 'क' का मतलब है- कफ, 'पि'का मतलब है- पित्त और 'वा' का मतलब है- वात। यह स्टार्ट अप हमारी परम्पराओं के मुताबिक स्वस्थ भोजन की आदतों पर आधारित है। एक और स्टार्ट अप निरोग-स्ट्रीट भी है जो आयुर्वेद स्वास्थ्य ईकोसिस्टम में एक अनूठी अवधारणा पर आधारित है। इसका प्रौद्योगिकी आधारित प्लेटफॉर्म दुनिया-भर के आयुर्वेदिक डॉक्टरों को सीधे लोगों से जोड़ता है। 50 हजार से अधिक डॉक्टर इससे जुड़े हुए हैं।

इसी तरह, आत्रेय इनोवेशन्स एक स्वास्थ्य टैक्नोलॉजी स्टार्ट अप है जो समग, स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम कर रहा है।इक्जोरियल ने न केवल अश्वगंधा के उपयोग को लेकर जागरूकता फैलाई है, बल्कि उच्च गुणवत्ता उत्पादन प्रक्रिया पर भी बड़ी मात्रा में निवेश किया है। क्योरवेदा ने जड़ी-बूटियों के आधुनिक शोध और पारंपरिक ज्ञान के संगम से समग, जीविका के लिए भोजन सप्लिमेंट्स का निर्माण किया है।

परिचय

(1) आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेदः।
अर्थात जो शास्त्र (विज्ञान) आयु (जीवन) का ज्ञान कराता है उसे आयुर्वेद कहते हैं।

(2) स्वस्थ व्यक्ति एवं आतुर (रोगी) के लिए उत्तम मार्ग बताने वाले विज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं।

(3) अर्थात जिस शास्त्र में आयु शाखा (उम्र का विभाजन), आयु विद्या, आयुसूत्र, आयु ज्ञान, आयु लक्षण (प्राण होने के चिन्ह), आयु तन्त्र (शारीरिक रचना शारीरिक क्रियाएं) - इन सम्पूर्ण विषयों की जानकारी मिलती है वह आयुर्वेद है।

पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार संसार की प्राचीनतम् पुस्तक ऋग्वेद है। विभिन्न विद्वानों ने इसका रचना काल ईसा के 3,000 से 50,000 वर्ष पूर्व तक का माना है। ऋग्वेद-संहिता में भी आयुर्वेद के अतिमहत्त्व के सिद्धान्त यत्र-तत्र विकीर्ण है। चरक, सुश्रुत, काश्यप आदि मान्य ग्रन्थ आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं। इससे आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध होती है। अतः हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद की रचनाकाल ईसा पूर्व 3,000 से 50,000 वर्ष पहले यानि सृष्टि की उत्पत्ति के आस-पास या साथ का ही है।[1,2]

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथो के अनुसार यह देवताओं कि चिकित्सा पद्धति है जिसके ज्ञान को मानव कल्याण के लिए निवेदन किए जाने पर देवताओं द्वारा धरती के महान आचार्यों को दिया गया। इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होने दक्ष प्रजापति के धड़ में बकरे का सिर जोड़ना जैसी कई चमत्कारिक चिकित्साएं की थी। अश्विनीकुमारों से इंद्र ने यह विद्या प्राप्त की। इंद्र ने धन्वंतरि को सिखाया। काशी के राजा दिवोदास धन्वंतरि के अवतार कहे गए हैं। उनसे जाकर अलग अलग संप्रदायों के अनुसार उनके प्राचीन और पहले आचार्यों आत्रेय / सुश्रुत ने आयुर्वेद पढ़ा। अत्रि और भारद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। आयुर्वेद के आचार्य ये हैं— अश्विनीकुमार, धन्वंतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त्य, अत्रि तथा उनके छः शिष्य (अग्निवेश, भेड़, जतुकर्ण, पराशर,

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

सीरपाणि, हारीत), सुश्रुत और चरक। ब्रह्मा ने आयुर्वेद को आठ भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग का नाम 'तन्त्र' रखा । ये आठ भाग निम्नलिखित हैं :

क्रमांक	तन्त्र	आधुनिक चिकित्सा का निकटतम विभाग
1	शल्यतन्त्र	शल्यक्रिया
2	शालाक्यतन्त्र	कर्णनासाकंठ विज्ञान
3	कायचिकित्सा	सामान्य दवा
4	भूतविद्या तन्त्र	मनश्चिकित्सा
5	कौमारभृत्य	बालचिकित्सा
6	अगदतन्त्र	विषविज्ञान
7	रसायनतन्त्र	जराविद्या और जराचिकित्सा
8	वाजीकरणतन्त्र	पौरुषीकरण और कामोद्दीपक का विज्ञान

इस अष्टाङ्ग (= आठ अंग वाले) आयुर्वेद के अन्तर्गत देहतत्त्व, शरीर विज्ञान, शस्त्रविद्या, भेषज और द्रव्य गुण तत्त्व, चिकित्सा तत्त्व और धातृविद्या भी हैं। इसके अतिरिक्त उसमें सद्दश चिकित्सा (होम्योपैथी), विरोधी चिकित्सा (एलोपैथी), जलचिकित्सा (हाइड्रोपैथी), प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी), योग, सर्जरी, नाड़ी विज्ञान (पल्स डायग्नोसिस) आदि आजकल के अभिनव चिकित्सा प्रणालियों के मूल सिद्धान्तों के विधान भी 2500 वर्ष पूर्व ही सूत्र रूप में लिखे पाये जाते हैं ।[3,4]

शरीर पर इन सभी कारणों के तीन प्रकार के प्रभाव होते हैं :

(१) दोषप्रकोप- अनेक कारणों से शरीर के उपादानभूत आकाश आदि पांच तत्वों में से किसी एक या अनेक में परिवर्तन होकर उनके स्वाभाविक अनुपात में अंतर आ जाना अनिवार्य है। इसी को ध्यान में रखकर आयुर्वेदाचार्यों ने इन विकारों को वात, पित्त और कफ इन वर्गों में विभक्त किया है। पंचमहाभूत एवं त्रिदोष का अलग से विवेचन ही उचित है, किन्तु संक्षेप में यह समझना चाहिए कि संसार के जितने भी मूर्त (मैटिरयल) पदार्थ हैं वे सब आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पांच तत्वों से बने हैं।

ये पृथ्वी आदि वे ही नहीं है जो हमें नित्यप्रति स्थूल जगत् में देखने को मिलते हैं। ये पिछले सब तो पूर्वोक्त पांचों तत्वों के संयोग से उत्पन्न पांचभौतिक हैं। वस्तुओं में जिन तत्वों की बहुलता होती है वे उन्हीं नामों से वर्णित की जाती हैं। उसी प्रकार हमारे शरीर की धातुओं में या उनके संघटकों में जिस तत्व की बहुलता रहती है वे उसी श्रेणी के गिने जाते हैं। इन पांचों में आकाश तो निर्विकार है तथा पृथ्वी सबसे स्थूल और सभी का आश्रय है। जो कुछ भी विकास या परिवर्तन होते हैं उनका प्रभाव इसी पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। शेष तीन (वायु, तेज और जल) सब प्रकार के परिवर्तन या विकार उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। अत: तीनों की प्रचुरता के आधार पर, विभिन्न धातुओं एवं उनके संघटकों को वात, पित्त और कफ की संज्ञा दी गई है। सामान्य रूप से ये तीनों धातुएं शरीर की पोषक होने के कारण विकृत होने पर अन्य धातुओं को भी दूषित करती हैं। अतः दोष तथा मल रूप होने से मल कहलाती हैं। रोग में किसी भी कारण से इन्हीं तीनों की न्यूनता या अधिकता होती है, जिसे दोषप्रकोप कहते हैं।[5,6]

(२) धातुदूषण- कुछ पदार्थ या कारण ऐसे होते हैं जो किसी विशिष्ट धातु या अवयव में ही विकार करते हैं। इनका प्रभाव सारे शरीर पर नहीं होता। इन्हें धातुप्रदूषक कहते हैं।

(३) उभयहेतु- वे पदार्थ जो सारे शरीर में वात आदि दोषों को कुपित करते हुए भी किसी धातु या अंग विशेष में ही विशेष विकार उत्पन्न करते हैं, उभयहेतु कहलाते हैं। किंतु इन तीनों में जो परिवर्तन होते हैं वे वात, पित्त या कफ इन तीनों में से किसी एक, दो या तीनों में ही विकार उत्पन्न करते हैं। अत: ये ही तीनों दोष प्रधान शरीरगत कारण होते हैं, क्योंकि इनके स्वाभाविक अनुपात में परिवर्तन होने से शरीर की धातुओं आदि में भी विकृति होती है। रचना में विकार होने से क्रिया में भी विकार होना स्वाभाविक है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

इस अस्वाभाविक रचना और क्रिया के परिणामस्वरूप अतिसार, कास आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं और इन लक्षणों के समूह को ही रोग कहते हैं।

इस प्रकार जिन पदार्थों के प्रभाव से वात आदि दोषों में विकृतियां होती हैं तथा वे वातादि दोष, जो शारीरिक धातुओं को विकृत करते हैं, दोनों ही हेतु (कारण) या निदान (आदिकारण) कहलाते हैं। अंततः इनके दो अन्य महत्वपूर्ण भेदों का विचार अपेक्षित है :

- (१) निज (इडियोपैथिक)- जब पूर्वोक्त कारणों से क्रमशः शरीरगत वातादि दोष में और उनके द्वारा धातुओं में, विकार उत्पन्न होते हैं तो उनको निज हेतु या निज रोग कहते हैं।

- (२) आगंतुक (ऐक्सिडेंटल)- चोट लगना, आग से जलना, विद्‌युत्प्रभाव, सांप आदि विषैले जीवों के काटने या विषप्रयोग से जब एकाएक विकार उत्पन्न होते हैं तो उनमें भी वातादि दोषों का विकार होते हुए भी, कारण की भिन्नता और प्रबलता से, वे कारण और उनसे उत्पन्न रोग आगंतुक कहलाते हैं।

'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ- समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। आगे योग में हम देखेंगे कि आत्मा और परमात्मा के विषय में भी योग कहा गया है।

परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जो अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषों से मुक्त हो, योग शब्द के वाच्यार्थ का ऐसा लक्षण बतला सके जो प्रत्येक प्रसंग के लिये उपयुक्त हो और योग के सिवाय किसी अन्य वस्तु के लिये उपयुक्त न हो। भगवद्गीता प्रतिष्ठित ग्रन्थ माना जाता है। उसमें योग शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है, कभी अकेले और कभी सविशेषण, जैसे बुद्धियोग, सन्यासयोग, कर्मयोग। वेदोत्तर काल में भक्तियोग और हठयोग नाम भी प्रचलित हो गए हैं।[7,8] पतंजलि योगदर्शन में क्रियायोग शब्द देखने में आता है। पाशुपत योग और माहेश्वर योग जैसे शब्दों के भी प्रसंग मिलते है। इन सब स्थलों में योग शब्द के जो अर्थ हैं वह एक दूसरे से भिन्न हैं।

गीता में श्रीकृष्ण ने एक स्थल पर कहा है 'योगः कर्मसु कौशलम्' (कर्मों में कुशलता ही योग है।) यह वाक्य योग की परिभाषा नहीं है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि जीवात्मा और परमात्मा के मिल जाने को योग कहते हैं। इस बात को स्वीकार करने में यह बड़ी आपत्ति खड़ी होती है कि बौद्धमतावलम्बी भी, जो परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, योग शब्द का व्यवहार करते और योग का समर्थन करते हैं। यही बात सांख्यवादियों के लिए भी कही जा सकती है जो ईश्वर की सत्ता को असिद्ध मानते हैं। पतञ्जलि ने योगसूत्र में, जो परिभाषा दी है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः', चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं: चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था का नाम योग है या इस अवस्था को लाने के उपाय को योग कहते हैं।[9,10]

परन्तु इस परिभाषा पर कई विद्वानों को आपत्ति है। उनका कहना है कि चित्तवृत्तियों के प्रवाह का ही नाम चित्त है। पूर्ण निरोध का अर्थ होगा चित्त के अस्तित्व का पूर्ण लोप, चित्ताश्रय समस्त स्मृतियों और संस्कारों का निःशेष हो जाना। यदि ऐसा हो जाए तो फिर समाधि से उठना संभव नहीं होगा। क्योंकि उस अवस्था के सहारे के लिये कोई भी संस्कार बचा नहीं होगा, प्रारब्ध दग्ध हो गया होगा। निरोध यदि संभव हो तो श्रीकृष्ण के इस वाक्य का क्या अर्थ होगा? योगस्थः कुरु कर्माणि, योग में स्थित होकर कर्म करो। विरुद्धावस्था में कर्म हो नहीं सकता और उस अवस्था में कोई संस्कार नहीं पड़ सकते, स्मृतियाँ नहीं बन सकतीं, जो समाधि से उठने के बाद कर्म करने में सहायक हों।

संक्षेप में आशय यह है कि योग के शास्त्रीय स्वरूप, उसके दार्शनिक आधार, को सम्यक् रूप से समझना बहुत सरल नहीं है। संसार को मिथ्या माननेवाला अद्वैतवादी भी निदिध्याह्न के नाम से उसका समर्थन करता है। अनीश्वरवादी सांख्य विद्वान भी उसका अनुमोदन करता है। बौद्ध ही नहीं, मुस्लिम सूफ़ी और ईसाई मिस्टिक भी किसी न किसी प्रकार अपने संप्रदाय की मान्यताओं और दार्शनिक सिद्धांतों के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं।

इन विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं में किस प्रकार ऐसा समन्वय हो सकता है कि ऐसा धरातल मिल सके जिस पर योग की भित्ति खड़ी की जा सके, यह बड़ा रोचक प्रश्न है परंतु इसके विवेचन के लिये बहुत समय चाहिए। यहाँ उस प्रक्रिया पर थोड़ा सा

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

विचार कर लेना आवश्यक है जिसकी रूपरेखा हमको पतंजलि के सूत्रों में मिलती है। थोड़े बहुत शब्दभेद से यह प्रक्रिया उन सभी समुदायों को मान्य है जो योग के अभ्यास का समर्थन करते हैं।

पीएम मोदी ने कहा, ''ऐसे स्टार्ट अप्स की सूची बहुत लंबी है। ये भारत के युवा उद्यमियों और भारत में बन रही नई संभावनाओं का प्रतीक है। मेरा स्वास्थ्य क्षेत्र के स्टार्ट अप्स और विशेषकर आयुष स्टार्ट अप्स से एक आग्रह भी है। आप ऑनलाइन जो भी पोर्टल बनाते हैं, जो भी कंटेट सृजित करते हैं, वो संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता प्राप्त सभी भाषाओं में भी बनाने का प्रयास करें। दुनिया में बहुत सारे ऐसे देश हैं जहां अंग्रेजी न इतनी बोली जाती है और ना ही इतनी समझी जाती है। ऐसे देशों को भी ध्यान में रखकर अपनी जानकारी का प्रचार-प्रसार करें। मुझे विश्वास है, भारत के आयुष स्टार्ट अप्स बेहतर गुणवत्ता के उत्पाद के साथ जल्द ही दुनिया भर में छा जायेंगे।'' प्रधानमंत्री ने इसके साथ ही भारतीय योग एवं प्राचीन परंपराओं के साथ जीने वाले एवं हाल में पद्म श्री से सम्मानित वाराणसी के स्वामी शिवानंद का भी उल्लेख किया। उन्होंने कहा, ''हाल ही में हुए पदम् सम्मान समारोह में आपने बाबा शिवानंद जी को जरुर देखा होगा। 126 साल के बुजुर्ग की फुर्ती देखकर मेरी तरह हर कोई हैरान हो गया होगा और मैंने देखा पलक झपकते ही, वो नंदी मुद्रा में प्रणाम करने लगे। मैंने भी बाबा शिवानंद जी को झुककर बार-बार प्रणाम किया। 126 वर्ष की आयु और बाबा शिवानंद की फिटनेस दोनों आज देश में चर्चा का विषय है। पीएम ने कहा कि मैंने सोशल मीडिया पर कई लोगों की टिप्पणियों को देखा कि बाबा शिवानंद अपनी उम्र से चार गुना कम आयु से भी ज्यादा फिट हैं। वाकई, बाबा शिवानंद का जीवन हम सभी को प्रेरित करने वाला है। मैं उनकी दीर्घ आयु की कामना करता हूँ। उनमें योग के प्रति एक आकर्षण है और वे बहुत स्वस्थ जीवनशैली में जीते हैं।'' [11,12]

योग की उच्चावस्था समाधि, मोक्ष, कैवल्य आदि तक पहुँचने के लिए अनेकों साधकों ने जो साधन अपनाये उन्हीं साधनों का वर्णन योग ग्रन्थों में समय समय पर मिलता रहा। उसी को योग के प्रकार से जाना जाने लगा। योग की प्रामाणिक पुस्तकों में शिवसंहिता तथा गोरक्षशतक में योग के चार प्रकारों का वर्णन मिलता है -

मंत्रयोगों हष्ष्चैव लययोगस्तृतीयकः।
चतुर्थो राजयोगः (शिवसंहिता , 5/11)
मंत्रो लयो हठो राजयोगन्तर्भूमिका क्रमात्
एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोभियते॥ (गोरक्षशतकम्)

उपर्युक्त दोनों श्लोकों से योग के प्रकार हुए : मंत्रयोग, हठयोग लययोग व राजयोग।

'मंत्र' का समान्य अर्थ है- 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'। मन को त्राय (पार कराने वाला) मंत्र ही है। मन्त्र योग का सम्बन्ध मन से है, मन को इस प्रकार परिभाषित किया है- मनन इति मनः। जो मनन, चिन्तन करता है वही मन है। मन की चंचलता का निरोध मंत्र के द्वारा करना मंत्र योग है। मंत्र योग के बारे में योगतत्वोपनिषद में वर्णन इस प्रकार है-

योग सेवन्ते साधकाधमाः।

(अल्पबुद्धि साधक मंत्रयोग से सेवा करता है अर्थात मंत्रयोग उन साधकों के लिए है जो अल्पबुद्धि है।)

मंत्र से ध्वनि तरंगें पैदा होती है मंत्र शरीर और मन दोनों पर प्रभाव डालता है। मंत्र में साधक जप का प्रयोग करता है मंत्र जप में तीन घटकों का काफी महत्व है वे घटक-उच्चारण, लय व ताल हैं। तीनों का सही अनुपात मंत्र शक्ति को बढ़ा देता है। मंत्रजप मुख्यरूप से चार प्रकार से किया जाता है।

(1) वाचिक (2) मानसिक (3) उपांशु (4) अणपा।

हठ का शाब्दिक अर्थ हठपूर्वक किसी कार्य को करने से लिया जाता है। हठ प्रदीपिका पुस्तक में हठ का अर्थ इस प्रकार दिया है-

हकारेणोच्यते सूर्यष्ठकार चन्द्र उच्यते।
सूर्या चन्द्रमसो र्योगाद्धठयोगोऽभिधीयते॥

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

ह का अर्थ सूर्य तथा ठ का अर्थ चन्द्र बताया गया है। सूर्य और चन्द्र की समान अवस्था हठयोग है। शरीर में कई हजार नाड़ियाँ है उनमें तीन प्रमुख नाड़ियों का वर्णन है, वे इस प्रकार हैं। सूर्यनाड़ी अर्थात पिंगला जो दाहिने स्वर का प्रतीक है। चन्द्रनाड़ी अर्थात इड़ा जो बायें स्वर का प्रतीक है। इन दोनों के बीच तीसरी नाड़ी सुषुम्ना है। इस प्रकार हठयोग वह क्रिया है जिसमें पिंगला और इड़ा नाड़ी के सहारे प्राण को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराकर ब्रहमरन्ध्र में समाधिस्थ किया जाता है। हठ प्रदीपिका में हठयोग के चार अंगों का वर्णन है- आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध तथा नादानुसधान। घेरण्डसंहिता में सात अंग- षटकर्म, आसन, मुद्राबन्ध, प्राणायाम, ध्यान, समाधि जबकि योगतत्वोपनिषद में आठ अंगों का वर्णन है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि

चित्त का अपने स्वरूप विलीन होना या चित्त की निरूद्ध अवस्था लययोग के अन्तर्गत आता है। साधक के चित्त् में जब चलते, बैठते, सोते और भोजन करते समय हर समय ब्रह्म का ध्यान रहे इसी को लययोग कहते हैं। योगत्वोपनिषद में इस प्रकार वर्णन है-

गच्छस्तिष्ठन स्वपन भुंजन् ध्यायेन्त्रिष्कलमीश्वरम् स एव लययोगः स्यात (22-23)

राजयोग सभी योगों का राजा कहलाया जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक प्रकार के योग की कुछ न कुछ सामग्री अवश्य मिल जाती है। राजयोग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित अष्टांग योग का वर्णन आता है। राजयोग का विषय चित्तवृत्तियों का निरोध करना है।[13,14]

महर्षि पतंजलि के अनुसार समाहित चित्त वालों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा विक्षिप्त चित्त वालों के लिए क्रियायोग का सहारा लेकर आगे बढ़ने का रास्ता सुझाया है। इन साधनों का उपयोग करके साधक के क्लेशों का नाश होता है, चित्त प्रसन्न होकर ज्ञान का प्रकाश फैलता है और विवेक ख्याति प्राप्त होती है।

योगाडांनुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्यातेः (2/28)

राजयोग के अन्तर्गत महर्षि पतंजलि ने अष्टांग को इस प्रकार बताया है-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि।

योग के आठ अंगों में प्रथम पाँच बहिरंग तथा अन्य तीन अन्तरंग में आते हैं।

उपर्युक्त चार प्रकार के अतिरिक्त गीता में दो प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है-

- (१) ज्ञानयोग
- (२) कर्म योग

ज्ञानयोग, सांख्ययोग से सम्बन्ध रखता है। पुरुष प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होना ही ज्ञान योग है। सांख्य दर्शन में 25 तत्वों का वर्णन मिलता है।

विचार-विमर्श

पूर्वोक्त कारणों से उत्पन्न विकारों की पहचान जिन साधनों द्वारा होती है उन्हें लिंग कहते हैं। इसके चार भेद हैं : पूर्वरूप, रूप, संप्राप्ति और उपशय।

पूर्वरूप- किसी रोग के व्यक्त होने के पूर्व शरीर के भीतर हुई अत्यल्प या आरंभिक विकृति के कारण जो लक्षण उत्पन्न होकर किसी रोगविशेष की उत्पत्ति की संभावना प्रकट करते हैं उन्हें पूर्वरूप (प्रोडामेटा) कहते हैं।[15,16]

रूप (साइंस एंड सिंप्टम्स) - जिन लक्षणों से रोग या विकृति का स्पष्ट परिचय मिलता है उन्हें रूप कहते हैं।

संप्राप्ति (पैथोजेनेसिस) : किस कारण से कौन सा दोष स्वतंत्र रूप में या परतंत्र रूप में, अकेले या दूसरे के साथ, कितने अंश में और कितनी मात्रा में प्रकुपित होकर, किस धातु या किस अंग में, किस-किस स्वरूप का विकार उत्पन्न करता है, इसके निर्धारण को संप्राप्ति कहते हैं। चिकित्सा में इसी की महत्वपूर्ण उपयोगिता है। वस्तुत: इन परिवर्तनों से ही ज्वरादि रूप में रोग उत्पन्न होते

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

हैं, अत: इन्हें ही वास्तव में रोग भी कहा जा सकता है और इन्हीं परिवर्तनों को ध्यान में रखकर की गई चिकित्सा भी सफल होती है।

उपशय और अनुपशय (थेराप्यूटिक टेस्ट) - जब अल्पता या संकीर्णता आदि के कारण रोगों के वास्तविक कारणों या स्वरूपों का निर्णय करने में संदेह होता है, तब उस संदेह के निराकरण के लिए संभावित दोषों या विकारों में से किसी एक के विकार से उपयुक्त आहार-विहार और औषध का प्रयोग करने पर जिससे लाभ होता है उसे उपचय के विवेचन में आयुर्वेदाचार्यो ने छह प्रकार से आहार-विहार और औषध के प्रयोगों का सूत्र बतलाते हुए उपशय के १८ भेदों का वर्णन किया है। ये सूत्र इतने महत्व के हैं कि इनमें से एक-एक के आधार पर एक-एक चिकित्सापद्धति का उदय हो गया है; जैसे,

- (१) हेतु के विपरीत आहार विहार या औषध का प्रयोग करना।
- (२) व्याधि, वेदना या लक्षणों के विपरीत आहार विहार या औषध का प्रयोग करना। स्वयं एलोपैथी की स्थापना इसी पद्धति पर हुई थी (ऐलोज़ = विपरीत ; अपैथोज़ = वेदना)।
- (३) हेतु और व्याधि, दोनों के विपरीत आहार विहार और औषध का प्रयोग करना।
- (४) हेतुविपरीतार्थकारी, अर्थात् रोग के कारण के समान होते हुए भी उस कारण के विपरीत कार्य करनेवाले आहार आदि का प्रयोग; जैसे, आग से जलने पर सेंकने या गरम वस्तुओं का लेप करने से उस स्थान पर रक्तसंचार बढ़कर दोषों का स्थानांतरण होता है तथा रक्त का जमना रुकने, पाक के रुकने पर शांति मिलती है।
- (५) व्याधिविपरीतार्थकारी, अर्थात् रोग या वेदना को बढ़ानेवाला प्रतीत होते हुए भी व्याधि के विपरीत कार्य करनेवाले आहार आदि का प्रयोग (होमियोपैथी से तुलना करें : होमियो =समान, अपैथोज़ =वेदना)।
- (६) उभयविरीतार्थकारी, अर्थात् कारण और वेदना दोनों के समान प्रतीत होते हुए भी दोनों के विपरीत कार्य करनेवाले आहार विहार और औषध का प्रयोग।

उपशय और अनुपशय से भी रोग की पहचान में सहायता मिलती है। अत: इनको भी प्राचीनों ने "लिंग" में ही गिना है। हेतु और लिंग के द्वारा रोग का ज्ञान प्राप्त करने पर ही उसकी उचित और सफल चिकित्सा (औषध) संभव है। हेतु और लिंगों से रोग की परीक्षा होती है, किंतु इनके समुचित ज्ञान के लिए रोगी की परीक्षा करनी चाहिए।[17,18]

जिन साधनों के द्वारा रोगों के कारणभूत दोषों एवं शारीरिक विकृतियों का शमन किया जाता है उन्हें औषध कहते हैं। ये मख्यतः दो प्रकार की होती है : अपद्रव्यभूत और द्रव्यभूत।

अद्रव्यभूत औषध वह है जिसमें किसी द्रव्य का उपयोग नहीं होता, जैसे उपवास, विश्राम, सोना, जागना, टहलना, व्यायाम आदि।

बाह्य या आभ्यंतर प्रयोगों द्वारा शरीर में जिन बाह्य द्रव्यों (ड्रग्स) का प्रयोग होता है वे द्रव्यभूत औषध हैं। ये द्रव्य संक्षेप में तीन प्रकार के होते हैं :

- (१) जांगम (ऐनिमल ड्रग्स), जो विभिन्न प्राणियों के शरीर से प्राप्त होते हैं, जैसे मधु, दूध, दही, घी, मक्खन, मठ्ठा, पित्त, वसा, मज्जा, रक्त, मांस, पुरीष, मूत्र, शुक्र, चर्म, अस्थि, शृंग, खुर, नख, लोम आदि;
- (२) औद्भिद (हर्बल ड्रग्स) : मूल (जड़), फल आदि

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

- (३) पार्थिव (खनिज, मिनरल ड्रग्स), जैसे सोना, चांदी, सीसा, रांगा, तांबा, लोहा, चूना, खड़िया, अभ्रक, संखिया, हरताल, मैनसिल, अंजन (एंटीमनी), गेरू, नमक आदि।

शरीर की भांति ये सभी द्रव्य भी पांचभौतिक होते हैं, इनके भी वे ही संघटक होते हैं जो शरीर के हैं। अत: संसार में कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है जिसका किसी न किसी रूप में किसी न किसी रोग के किसी न किसी अवस्थाविशेष में औषधरूप में प्रयोग न किया जा सके। किंतु इनके प्रयोग के पूर्व इनके स्वाभाविक गुणधर्म, संस्कारजन्य गुणधर्म, प्रयोगविधि तथा प्रयोगमार्ग का ज्ञान आवश्यक है। इनमें कुछ द्रव्य दोषों का शमन करते हैं, कुछ दोष और धातु को दूषित करते हैं और कुछ स्वस्थ्वृत में, अर्थात् धातुसाम्य को स्थिर रखने में उपयोगी होते हैं, इनकी उपयोगिता के समुचित ज्ञान के लिए द्रव्यों के पांचभौतिक संघटकों में तारतम्य के अनुसार स्वरूप (कंपोज़िशन), गुरुता, लघुता, रूक्षता, स्निग्धता आदि गुण, रस (टेस्ट एंड लोकल ऐक्शन), वपाक (मेटाबोलिक चेंजेज़), वीर्य (फिज़िओलॉजिकल ऐक्शन), प्रभाव (स्पेसिफ़िक ऐक्शन) तथा मात्रा (डोज़) का ज्ञान आवश्यक होता है।

आयुर्वेद के ऐतिहासिक ज्ञान के सन्दर्भ में, चरक मत के अनुसार, आयुर्वेद का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा से प्रजापति ने, प्रजापति से दोनों अश्विनी कुमारों ने, उनसे इन्द्र ने और इन्द्र से भारद्वाज ने आयुर्वेद का अध्ययन किया। च्यवन ऋषि का कार्यकाल भी अश्विनी कुमारों का समकालीन माना गया है। आयुर्वेद के विकास में ऋषि च्यवन का अतिमहत्त्वपूर्ण योगदान है। फिर भारद्वाज ने आयुर्वेद के प्रभाव से दीर्घ सुखी और आरोग्य जीवन प्राप्त कर अन्य ऋषियों में उसका प्रचार किया। तदनन्तर पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश, भेल, जतू, पाराशर, हारीत और क्षारपाणि नामक छः शिष्यों को आयुर्वेद का उपदेश दिया। इन छः शिष्यों में सबसे अधिक बुद्धिमान अग्निवेश ने सर्वप्रथम एक संहिता (अग्निवेश तंत्र) का निर्माण किया- जिसका प्रतिसंस्कार बाद में चरक ने किया और उसका नाम चरकसंहिता पड़ा, जो आयुर्वेद का आधार-स्तम्भ है। धन्वन्तरि ने भी आयुर्वेद का प्रकाशन ब्रह्मदेव द्वारा ही प्रतिपादित किया हुआ माना है। सुश्रुत के अनुसार काशीराज दिवोदास के रूप में अवतरित भगवान धन्वन्तरि के पास अन्य महर्षियों के साथ सुश्रुत आयुर्वेद का अध्ययन करने हेतु गये और उनसे आवेदन किया। उस समय भगवान धन्वन्तरि ने उन लोगों को उपदेश करते हुए कहा कि सर्वप्रथम स्वयं ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पादन के पूर्व ही अथर्ववेद के उपवेद आयुर्वेद को एक हजार अध्यायों तथा एक लाख श्लोकों में प्रकाशित किया और पुनः मनुष्य को अल्पमेधावी समझकर इसे आठ अंगों में विभक्त कर दिया। पुनः भगवान धन्वन्तरि ने कहा कि ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, उनसे दोनों अश्विनीकुमारों ने, तथा उनसे इन्द्र ने आयुर्वेद का अध्ययन किया।[19,20]

आयुर्वेद का उद्देश्य ही स्वस्थ प्राणी के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी की रोग को दूर करना है -

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं आतुरस्यविकारप्रशमनं च ॥ (चरकसंहिता, सूत्रस्थान ३०/२६)

आयुर्वेद के दो उद्देश्य हैं :

(१) स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना,

(२) रोगी (आतुर) व्यक्तियों के विकारों को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाना।

इसके लिए अपने शरीर और प्रकृति के अनुकूल देश, काल आदि का विचार करना नियमित आहार-विहार, चेष्टा, व्यायाम, शौच, स्नान, शयन, जागरण आदि गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी शास्त्रोक्त दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन करना, संकटमय कार्यों से बचना, प्रत्येक कार्य विवेकपूर्वक करना, मन और इंद्रिय को नियंत्रित रखना, देश, काल आदि परिस्थितियों के अनुसार अपने अपने शरीर आदि की शक्ति और अशक्ति का विचार कर कोई कार्य करना, मल, मूत्र आदि के उपस्थित वेगों को न रोकना, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, अहंकार आदि से बचना, समय-समय पर शरीर में संचित दोषों को निकालने के लिए वमन, विरेचन आदि के प्रयोगों से शरीर की शुद्धि करना, सदाचार का पालन करना और दूषित वायु, जल, देश और काल के प्रभाव से उत्पन्न महामारियों (जनपदोद्ध्वंसनीय व्याधियों, एपिडेमिक डिज़ीज़ेज़) में विज्ञ चिकित्सकों के उपदेशों का समुचित रूप से पालन करना, स्वच्छ और विशोधित जल, वायु, आहार आदि का सेवन करना और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करना, ये स्वास्थ्यरक्षा के साधन हैं।

इसके लिए प्रत्येक रोग के

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

- हेतु (कारण),
- लिंग - रोगपरिचायक विषय, जैसे पूर्वरूप, रूप (signs & symptoms), संप्राप्ति (पैथोजेनिसिस) तथा उपशयानुपशय (थिराप्युटिकटेस्ट्स)
- औषध का ज्ञान परमावश्यक है।

ये तीनों आयुर्वेद के 'त्रिस्कन्ध' (तीन प्रधान शाखाएं) कहलाती हैं। इसका विस्तृत विवेचन आयुर्वेद ग्रंथों में किया गया है। यहाँ केवल संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जाएगा। किंतु इसके पूर्व आयु के प्रत्येक संघटक का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है, क्योंकि संघटकों के ज्ञान के बिना उनमें होनेवाले विकारों को जानना संभव न होगा।

समस्त चेष्टाओं, इंद्रियों, मन ओर आत्मा के आधारभूत पंचभौतिक पिंड को 'शरीर' कहते हैं। मानव शरीर के स्थूल रूप में छह अंग हैं; दो हाथ, दो पैर, शिर और ग्रीवा एक तथा अंतराधि (मध्यशरीर) एक। इन अंगों के अवयवों को प्रत्यंग कहते हैं-

> मूर्धा (हेड), ललाट, भ्रू, नासिका, अक्षिकूट (ऑर्बिट), अक्षिगोलक (आइबॉल), वर्त्स (पलक), पक्ष्म (बरुनी), कर्ण (कान), कर्णपुत्रक (ट्रैगस), शष्कुली और पाली (पिन्न एंड लोब ऑव इयर्स), शंख (माथे के पार्श्व, टेंपुल्स), गंड (गाल), ओष्ठ (होंठ), सृक्कणी (मुख के कोने), चिबुक (ठुड्डी), दंतवेष्ट (मसूड़े), जिह्वा (जीभ), तालु, टांसिल्स, गलशुंडिका (युवुला), गोजिह्विका (एपीग्लॉटिस), ग्रीवा (गरदन), अवटुका (लैरिंग्ज़), कंधरा (कंधा), कक्षा (एक्सिला), जत्रु (हंसुली, कालर), वक्ष (थोरेक्स), स्तन, पार्श्व (बगल), उदर (बेली), नाभि, कुक्षि (कोख), बस्तिशिर (ग्रॉयन), पृष्ठ (पीठ), कटि (कमर), श्रोणि (पेल्विस), नितंब, गुदा, शिश्न या भग, वृषण (टेस्टीज़), भुज, कूर्पर (केहुनी), बाहुपिंडिका या अरत्नि (फ़ोरआर्म), मणिबंध (कलाई), हस्त (हथेली), अंगुलियां और अंगुष्ठ, ऊरु (जांघ), जानु (घुटना), जंघा (टांग, लेग), गुल्फ (टखना), प्रपद (फुट), पादांगुलि, अंगुष्ठ और पादतल (तलवा),। इनके अतिरिक्त हृदय, फुफ्फुस (लंग्स), यकृत (लिवर), प्लीहा (स्प्लीन), आमाशय (स्टमक), पित्ताशय (गाल ब्लैडर), वृक्क (गुर्दा, किडनी), वस्ति (यूरिनरी ब्लैडर), क्षुद्रांत (स्मॉल इंटेस्टिन), स्थूलांत्र (लार्ज इंटेस्टिन), वपावहन (मेसेंटेरी), पुरीषाधार, उत्तर और अधरगुद (रेक्टम), ये कोष्ठांग हैं और सिर में सभी इंद्रियों और प्राणों के केंद्रों का आश्रय मस्तिष्क (ब्रेन) है।

आयुर्वेद के अनुसार सारे शरीर में ३०० अस्थियां हैं, जिन्हें आजकल केवल गणना-क्रम-भेद के कारण दो सौ छह (२०६) मानते हैं तथा संधियाँ (ज्वाइंट्स) २००, स्नायु (लिंगामेंट्स) ९००, शिराएं (ब्लड वेसेल्स, लिफ़ैटिक्स ऐंड नर्ब्ज़) ७००, धमनियां (क्रेनियल नर्ब्ज़) २४ और उनकी शाखाएं २००, पेशियां (मसल्स) ५०० (स्त्रियों में २० अधिक) तथा सूक्ष्म स्रोत ३०,९५६ हैं।

आयुर्वेद के अनुसार शरीर में रस (बाइल ऐंड प्लाज्मा), रक्त, मांस, मेद (फ़ैट), अस्थि, मज्जा (बोन मैरो) और शुक्र (सीमेन), ये सात धातुएँ हैं। नित्यप्रति स्वाभावतः विविध कार्यों में उपयोग होने से इनका क्षय भी होता रहता है, किन्तु भोजन और पान के रूप में हम जो विविध पदार्थ लेते रहते हैं उनसे न केवल इस क्षति की पूर्ति होती है, वरन् धातुओं की पुष्टि भी होती रहती है। आहाररूप में लिया हुआ पदार्थ पाचकाग्नि, भूताग्नि और विभिन्न धात्वनिग्नयों द्वारा परिपक्व होकर अनेक परिवर्तनों के बाद पूर्वोक्त धातुओं के रूप में परिणत होकर इन धातुओं का पोषण करता है। इस पाचनक्रिया में आहार का जो सार भाग होता है उससे रस धातु का पोषण होता है और जो किट्ट भाग बचता है उससे मल (विष्ठा) और मूत्र बनता है। यह रस हृदय से होता हुआ शिराओं द्वारा सारे शरीर में पहुँचकर प्रत्येक धातु और अंग को पोषण प्रदान करता है। धात्वग्नियों से पाचन होने पर रस आदि धातु के सार भाग से रक्त आदि धातुओं एवं शरीर का भी पोषण होता है तथा किट्ट भाग से मलों की उत्पत्ति होती है, जैसे रस से कफ; रक्त पित्त; मांस से नाक, कान और नेत्र आदि के द्वारा बाहर आनेवाले मल; मेद से स्वेद (पसीना); अस्थि से केश तथा लोम (सिर के और दाढ़ी, मूंछ आदि के बाल) और मज्जा से आंख का कीचड़ मलरूप में बनते हैं। शुक्र में कोई मल नहीं होता, उसके सारे भाग से ओज (बल) की उत्पत्ति होती है।

इन्हीं रसादि धातुओं से अनेक उपधातुओं की भी उत्पत्ति होती है, यथा रस से दूध, रक्त से कंडराएं (टेंडंस) और शिराएँ, मांस से वसा (फ़ैट), त्वचा और उसके छह या सात स्तर (परत), मेद से स्नायु (लिंगामेंट्स), अस्थि से दांत, मज्जा से केश और शुक्र से ओज नामक उपधातुओं की उत्पत्ति होती है।

> ये धातुएं और उपधातुएं विभिन्न अवयवों में विभिन्न रूपों में स्थित होकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं में उपयोगी होती हैं। जब तक ये उचित परिमाण और स्वरूप में रहती हैं और इनकी क्रिया स्वाभाविक रहती है तब तक शरीर स्वस्थ रहता है और जब ये न्यून या अधिक मात्रा में तथा विकृत स्वरूप में होती हैं तो शरीर में रोग की उत्पत्ति होती है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार संसार के सभी स्थूल पदार्थ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों के संयुक्त होने से बनते हैं। इनके अनुपात में भेद होने से ही उनके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। इसी प्रकार शरीर के समस्त धातु, उपधातु और मल पांचभौतिक हैं। परिणामत: शरीर के समस्त अवयव और अतत: सारा शरीर पांचभौतिक है। ये सभी अचेतन हैं। जब इनमें आत्मा का संयोग होता है तब उसकी चेतनता में इनमें भी चेतना आती है।

उचित परिस्थिति में शुद्ध रज और शुद्ध वीर्य का संयोग होने और उसमें आत्मा का संचार होने से माता के गर्भाशय में शरीर का आरंभ होता है। इसे ही गर्भ कहते हैं। माता के आहारजनित रक्त से अपरा (प्लैसेंटा) और गर्भनाड़ी के द्वारा, जो नाभि से लगी रहती है, गर्भ पोषण प्राप्त करता है। यह गर्भोदक में निमग्न रहकर उपस्नेहन द्वारा भी पोषण प्राप्त करता है तथा प्रथम मास में कलल (जेली) और द्वितीय में घन होता है? तीसरे मास में अंग प्रत्यंग का विकास आरंभ होता है। चौथे मास में उसमें अधिक स्थिरता आ जाती है तथा गर्भ के लक्षण माता में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगते हैं। इस प्रकार यह माता की कुक्षि में उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ जब संपूर्ण अंग, प्रत्यंग और अवयवों से युक्त हो जाता है, तब प्राय: नवें मास में कुक्षि से बाहर आकर नवीन प्राणी के रूप में जन्म ग्रहण करता है।[21]

परिणाम

शरीर में प्रत्येक अंग या किसी भी अवयव का निर्माण उद्देश्यविशेष से ही होता है, अर्थात् प्रत्येक अवयव के द्वारा विशिष्ट कार्यों की सिद्धि होती है, जैसे हाथ से पकड़ना, पैर से चलना, मुख से खाना, दांत से चबाना आदि। कुछ अवयव ऐसे भी हैं जिनसे कई कार्य होते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनसे एक विशेष कार्य ही होता है। जिनसे कार्यविशेष ही होता है उनमें उस कार्य के लिए शक्तिसंपन्न एक विशिष्ट सूक्ष्म रचना होती है। इसी को इंद्रिय कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन बाह्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्रमानुसार कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये अवयव इंद्रियाश्रय अवयव (विशेष इंद्रियों के अंग) कहलाते हैं और इनमें स्थित विशिष्ट शक्तिसंपन्न सूक्ष्म वस्तु को इंद्रिय कहते हैं। ये क्रमश: पाँच हैं-

श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण।

इन सूक्ष्म अवयवों में पंचमहाभूतों में से उस महाभूत की विशेषता रहती है जिसके शब्द (ध्वनि) आदि विशिष्ट गुण हैं; जैसे शब्द के लिए श्रोत्र इंद्रिय में आकाश, स्पर्श के लिए त्वक् इंद्रिय में वायु, रूप के लिए चक्षु इंद्रिय में तेज, रस के लिए रसनेंद्रिय में जल और गंध के लिए घ्राणेंद्रिय में पृथ्वी तत्व। इन पांचों इंद्रियों को ज्ञानेंद्रिय कहते हैं। इनके अतिरिक्त विशिष्ट कार्यसंपादन के लिए पांच कर्मेंद्रियां भी होती हैं, जैसे गमन के लिए पैर, ग्रहण के लिए हाथ, बोलने के लिए जिह्वा (गोजिह्वा), मलत्याग के लिए गुदा और मूत्रत्याग तथा संतानोत्पादन के लिए शिश्न (स्त्रियों में भग)। आयुर्वेद दार्शनिकों की भाँति इंद्रियों को आहंकारिक नहीं, अपितु भौतिक मानता है। इन इंद्रियों की अपने कार्यों मन की प्रेरणा से ही प्रवृत्ति होती है। मन से संपर्क न होने पर ये निष्क्रिय रहती है।

प्रत्येक प्राणी के शरीर में अत्यन्त सूक्ष्म अणु रूप का और केवल एक ही मन होता है (अणुत्वं च एकत्वं दौ गुणौ मनसः स्मृतः)। यह अत्यन्त द्रुतगति वाला और प्रत्येक इंद्रिय का नियंत्रक होता है। किन्तु यह स्वयं भी आत्मा के संपर्क के बिना अचेतन होने से निष्क्रिय रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में सत्व, रज और तम, ये तीनों प्राकृतिक गुण होते हुए भी इनमें से किसी एक की सामान्यत: प्रबलता रहती है और उसी के अनुसार व्यक्ति सात्विक, राजस या तामस होता है, किंतु समय-समय पर आहार, आचार एवं परिस्थितियों के प्रभाव से दसरे गुणों का भी प्राबल्य हो जाता है। इसका ज्ञान प्रवृत्तियों के लक्षणों द्वारा होता है, यथा राग-द्वेष-शून्य यथार्थद्रष्टा मन सात्विक, रागयुक्त, सचेष्ट और चंचल मन राजस और आलस्य, दीर्घसूत्रता एवं निष्क्रियता आदि युक्त मन तामस होता है। इसीलिए सात्विक मन को शुद्ध, सत्व या प्राकृतिक माना जाता है और रज तथा तम उसके दोष कहे गए हैं। आत्मा से चेतनता प्राप्त कर प्राकृतिक या सदोष मन अपने गुणों के अनुसार इंद्रियों को अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त करता है और उसी के अनुरूप शारीरिक कार्य होते हैं। आत्मा मन के द्वारा ही इंद्रियों और शरीरावयवों को प्रवृत्त करता है, क्योंकि मन ही उसका करण (इंस्ट्रूमेंट) है। इसीलिए मन का संपर्क जिस इंद्रिय के साथ होता है उसी के द्वारा ज्ञान होता है, दूसरे के द्वारा नहीं। क्योंकि मन एक ओर सूक्ष्म होता है, अत: एक साथ उसका अनेक इंद्रियों के साथ संपर्क सभव नहीं है। फिर भी उसकी गति इतनी तीव्र है कि वह एक के बाद दूसरी इंद्रिय के संपर्क में शीघ्रता से परिवर्तित होता है, जिससे हमें यही ज्ञात होता है कि सभी के साथ उसका संपर्क है और सब कार्य एक साथ हो रहे हैं, किंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता।[19,20]

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

आत्मा पंचमहाभूत और मन से भिन्न, चेतनावान्, निर्विकार और नित्य है तथा साक्षी स्वरूप है, क्योंकि स्वयं निर्विकार तथा निष्क्रिय है। इसके संपर्क से सक्रिय किंतु अचेतन मन, इंद्रियों और शरीर में चेतना का संचार होता है और वे सचेष्ट होते हैं। आत्मा में रूप, रंग, आकृति आदि कोई चिह्न नहीं है, किंतु उसके बिना शरीर अचेतन होने के कारण निश्चेष्ट पड़ा रहता है और मृत कहलता है तथा उसके संपर्क से ही उसमें चेतना आती है तब उसे जीवित कहा जाता है और उसमें अनेक स्वाभाविक क्रियाएं होने लगती हैं; जैसे श्वासोच्छ्‌वास, छोटे से बड़ा होना और कटे हुए घाव भरना आदि, पलकों का खुलना और बंद होना, जीवन के लक्षण, मन की गति, एक इंद्रिय से हुए ज्ञान का दूसरी इंद्रिय पर प्रभाव होना (जैसे आँख से किसी सुंदर, मधुर फल को देखकर मुँह में पानी आना), विभिन्न इंद्रियों और अवयवों को विभन्न कार्यों में प्रवृत्त करना, विषयों का ग्रहण और धारण करना, स्वप्न में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना, एक आँख से देखी वस्तु का दूसरी आँख से भी अनुभव करना। इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख, प्रयत्न, धैर्य, बुद्धि, स्मरण शक्ति, अहंकार आदि शरीर में आत्मा के होने पर ही होते हैं; आत्मारहित मृत शरीर में नहीं होते। अत: ये आत्मा के लक्षण कहे जाते हैं, अर्थात् आत्मा का पूर्वोक्त लक्षणों से अनुमान मात्र किया जा सकता है। मानसिक कल्पना के अतिरिक्त किसी दूसरी इंद्रिय से उसका प्रत्यक्ष करना संभव नहीं है।

यह आत्मा नित्य, निर्विकार और व्यापक होते हुए भी पूर्वकृत शुभ या अशुभ कर्म के परिणामस्वरूप जैसी योनि में या शरीर में, जिस प्रकार के मन और इंद्रियों तथा विषयों के संपर्क में आती है वैसे ही कार्य होते हैं। उत्तरोत्तर अशुभ कार्यों के करने से उत्तरोत्तर अधोगति होती है तथा शुभ कर्मों के द्वारा उत्तरोत्तर उन्नति होने से, मन के राग-द्वेष-हीन होने पर, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा तो निर्विकार है, किंतु मन, इंद्रिय और शरीर में विकृति हो सकती है और इन तीनों के परस्पर सापेक्ष्य होने के कारण एक का विकार दूसरे को प्रभावित कर सकता है। अत: इन्हें प्रकृतिस्थ रखना या विकृत होने पर प्रकृति में लाना या स्वस्थ करना परमावश्यक है। इससे दीर्घ सुख और हितायु की प्राप्ति होती है, जिससे क्रमश: आत्मा को भी उसके एकमात्र, किंतु भीषण, जन्म मृत्यु और भवबंधनरूप रोग से मुक्ति पाने में सहायता मिलती है, जो आयुर्वेद में नैतिष्ठकी चिकित्सा कही गई है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में अपनी व्यस्त जीवन शैली के कारण लोग संतोष पाने के लिए योग करते हैं। योग से न केवल व्यक्ति का तनाव दूर होता है बल्कि मन और मस्तिष्क को भी शांति मिलती है योग बहुत ही लाभकारी है। योग न केवल हमारे दिमाग, मस्तिष्क को ही ताकत पहुंचाता है बल्कि हमारी आत्मा को भी शुद्ध करता है। आज बहुत से लोग मोटापे से परेशान हैं, उनके लिए योग बहुत ही फायदेमंद है। योग के फायदे से आज सब ज्ञात है, जिस वजह से आज योग विदेशों में भी प्रसिद्ध है।

चरक ने संक्षेप में रोग और आरोग्य का लक्षण यह लिखा है-

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों का सम मात्रा (उचित प्रमाण) में होना ही आरोग्य और इनमें विषमता होना ही रोग है।

सुश्रुत ने स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण विस्तार से दिया है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिससे सभी दोष सम मात्रा में हों, अग्नि सम हो, धातु, मल और उनकी क्रियाएं भी सम (उचित रूप में) हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए।

इसके विपरीत लक्षण हों तो अस्वस्थ समझना चाहिए। रोग को विकृति या विकार भी कहते हैं। अत: शरीर, इंद्रिय और मन के प्राकृतिक (स्वाभाविक) रूप या क्रिया में विकृति होना रोग है।

हेतु-लिंग-औषध रूपी आयुर्वेद के त्रिस्कन्ध हैं। अर्थात आयुर्वेद शास्त्र की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं- (१) हेतु ज्ञान, (२) लिंगज्ञान, (३) औषध ज्ञान। हेतु ज्ञान का अर्थ है- रोग किस कारण से उत्पन्न हुआ, यह जानकारी रखना। लिंग

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

ज्ञान का अर्थ है, रोग का विशेष लक्षण का ज्ञान प्राप्त करना। औषधि ज्ञान का तात्पर्य है, अमुक रोग में अमुक औषधि का प्रयोग करना। ठीक तरह से रोग का ज्ञान प्राप्त होने पर ही उस रोग की चिकित्सा सफल होती हैं। इसलिये पहले रोग की परीक्षा करें, उसे पहचानें, पश्चात् औषधि की व्यवस्था करें।

चरकसंहिता के निदानस्थान के श्लोक-२ में कहा गया है कि इस प्रकरन में हेतु, निमित्त, आयतन, कर्ता, कारण, प्रत्यय, समुत्थान तथा निदान एकार्थवाचक हैं। हेतु तीन प्रकार का होता है- असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध तथा परिणाम'

संसार की सभी वस्तुएँ साक्षात् या परंपरा से शरीर, इंद्रियों और मन पर किसी न किसी प्रकार का निश्चित प्रभाव डालती हैं और अनुचित या प्रतिकूल प्रभाव से इनमें विकार उत्पन्न कर रोगों का कारण होती हैं। इन सबका विस्तृत विवेचन कठिन है, अत: संक्षेप में इन्हें तीन वर्गों में बाँट दिया गया है :

(१) असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग : चक्षु आदि इंद्रियों का अपने-अपने रूप आदि विषयों के साथ असात्म्य (प्रतिकूल, हीन, मिथ्या और अति) संयोग इंद्रियों, शरीर और मन के विकार का कारण होता है; यथा आँख से बिलकुल न देखना (अयोग), अति तेजस्वी वस्तुओं का देखना और बहुत अधिक देखना (अतियोग) तथा अतिसूक्ष्म, संकीर्ण, अति दूर में स्थित तथा भयानक, बीभत्स, एवं विकृतरूप वस्तुओं को देखना (मिथ्यारोग)। ये चक्षुरिंद्रिय और उसके आश्रय नेत्रों के साथ मन और शरीर में भी विकार उत्पन्न करते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में अर्थ का दुर्योग भी कहते हैं। ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि ऋतुओं तथा बाल्य, युवा और वृद्धावस्थाओं का भी शरीर आदि पर प्रभाव पड़ता ही है, किंतु इनके हीन, मिथ्या और अतियोग का प्रभाव विशेष रूप से हानिकर होता है।

(२) प्रज्ञापराध : अविवेक (धीभ्रंश), अधीरता (धृतिभ्रंश) तथा पूर्व अनुभव और वास्तविकता की उपेक्षा (स्मृतिभ्रंश) के कारण लाभ हानि का विचार किए बिना ही किसी विषय का सेवन या जानते हुए भी अनुचित वस्तु का सेवन करना। इसी को दूसरे और स्पष्ट शब्दों में कर्म (शारीरिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाएं) का हीन, मिथ्या और अति योग भी कहते हैं।

(३) परिणाम

पूर्वोक्त कारणों के प्रकारान्तर से अन्य भेद भी होते हैं; यथा

(१) विप्रकृष्ट कारण (रिमोट कॉज़), जो शरीर में दोषों का संचय करता रहता है और अनुकूल समय पर रोग को उत्पन्न करता है,
(२) संनिकृष्ट कारण (इम्मीडिएट कॉज़), जो रोग का तात्कालिक कारण होता है,
(३) व्यभिचारी कारण (अबॉर्टिव कॉज़) जो परिस्थितिवश रोग को उत्पन्न करता है और नहीं भी करता तथा
(४) प्राधानिक कारण (स्पेसिफ़िक कॉज़), जो तत्काल किसी धातु या अवयवविशेष पर प्रभाव डालकर निश्चित लक्षणोंवाले विकार को उत्पन्न करता है, जैसे विभिन्न स्थावर और जांतव विष।

प्रकारान्तर से इनके अन्य दो भेद होते हैं-

(१) उत्पादक (प्रीडिस्पोज़िंग), जो शरीर में रोगविशेष की उत्पत्ति के अनुकूल परिवर्तन कर देता है;
(२) व्यंजक (एक्साइटिंग), जो पहले से रोगानुकूल शरीर में तत्काल विकारों को व्यक्त करता है।[21]

संदर्भ

1. डान लास्थौस. बौद्ध फेनोमेनोलोगी: ए फिलोसोफिकल इन्वेस्टीगेशन ऑफ़ योगकारा बुद्धिस्म अंड दी चेंग वेई-शिह लुन. (रौटलेड्ज) 2002 प्रकाशित. ISBN 0-7007-1186-4.पग 533
2. सरल तिब्बती बौद्ध धर्म: ए गाइड टू तांत्रिक लिविंग, सी अलेक्जेंडर सिम्प्किंस, अन्नेल्लें एम. सिम्प्किंस द्वारा लिखा गया है। 2001 प्रकाशित. टटल प्रकाशन. ISBN 0-8048-3199-8
3. दी बुद्धिस्ट त्रडिशन इन इंडिया, भारत और जापान. विलियम थिओडोर डी बारी द्वारा संपादित किया गया है। पन्ने. 207-208. ISBN 0-394-71696-5 - "दी मेडिटेशन स्कूल ने, चीनी में "चान" नाम से कहते है जो संस्कृत शब्द ध्यान से लिया गया है, पश्चिम में जापानी उच्चारण ज़ेन " से जाना जाता है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 6, June 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1106218 |

4. ज़ेन बौद्ध धर्म: ए हिस्ट्री (भारत और चीन)हेंरीच डमौलिन, जेम्स डब्ल्यू हेइसिग, पॉल एफ निटटर (पृष्ठ 13) द्वारा लिखा गया है। (पेज xviii)
5. ज़ेन बौद्ध धर्म: ए हिस्ट्री (भारत और चीन)हेंरीच डमौलिन, जेम्स डब्ल्यू हेइसिग, पॉल एफ निटटर (पृष्ठ 13) द्वारा लिखा गया है। (पृष्ठ 13)
6. दी लैयेन्स रोर: अन इन्त्रोदुक्शन टू तंत्र चोग्यम त्रुन्पा द्वारा. शम्भाला, 2001 ISBN 1-57062-895-5
7. सीक्रेट ऑफ़ दी वज्र वर्ल्ड: दी तांत्रिक बुद्धिस्म ऑफ़ तिबेट रेय रेगिनाल्ड ए शम्भाला द्वारा : 2002 मे लिखा गया। ISBN 1-57062-917-X पन्ना 37-38
8. सीक्रेट ऑफ़ दी वज्र वर्ल्ड: दी तांत्रिक बुद्धिस्म ऑफ़ तिबेट रेय रेगिनाल्ड ए शम्भाला द्वारा : 2002 मे लिखा गया।ISBN 1-57062-917-X पन्ना 57
9. योगा:दी तिबेतन योगा ऑफ़ मूवमेंट, चोग्याल नम्खई नोरबू द्वारा लिखा गया है। स्नो लायन, 2008. ISBN 1-55939-308-4
10. आयुर्वेद परिचय और इतिहास Archived 1 जुलाई 2021 at the Wayback Machine। आयुर्मीडिया।
11. "आयुर्वेद में स्वास्थ्य लक्षण एवं आयु". मूल से 24 मार्च 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 15 अगस्त 2019.
12. "Ayurvedic concept of life". मूल से 2 अप्रैल 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 15 अगस्त 2019.
13. चरकसंहिता Archived 2015-04-08 at the Wayback Machine (व्याख्या- जयदेव विद्यालंकार) पृष्ठ २७५
14. PSYCHOTHERAPY ACCORDING TO AYURVEDA
15. Chopra 2003, पृष्ठ 80
16. Monier-Williams, A Sanskrit Dictionary (1899), s.v. "Āyurveda" साँचा:OL
17. Poonam Bala. Medicine and Medical Policies in India: Social and Historical Perspectives. Lexington Books. पृ° 25.
18. David Rakel, Nancy Faass. Complementary Medicine in Clinical Practice: Integrative Practice in American Healthcare. Jones & Bartlett Learning. पृ° 170.
19. Benchmarks for training in traditional / complementary and alternative medicine Archived 2012-07-14 at the Wayback Machine (p. 23-25)
20. Birgit Heyn. Ayurveda: The Indian Art of Natural Medicine and Life Extension. Inner Traditions / Bear & Co. पृ° 17.
21. ↑ "Bachelor of Ayurvedic Medical Sciences [BAMS] Course - Syllabus and Subjects". मूल से 15 अगस्त 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 15 अगस्त 2019.

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 8.118

doi crossref

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

Scan to save the contact details

www.ijirset.com